Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.712
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2604S01V14P011

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Scientific Research Apr'26
Issue–IV(I), Volume–XIV

कबीरदास के साहित्य की वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. सत्वशिला गंगाधर माने

सारांश
कबीरदास हिंदी साहित्य के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख संत कवि और समाज सुधारक हैं। उनके साहित्य में निर्गुण, ईश्वर में विश्वास, समाज में व्याप्त बाह्याडंबरो व जाति-पाति का कडा दर्श विरोध, गुरु का महत्व, रहस्यवाद, प्रेम की महत्ता आदि गुण हमें दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी रचनाएँ आम बोलचाल की भाषा में लिखी थीं। राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी और ब्रजभाषा के शब्दों का मिश्रित रूप था। कबीरदास के साहित्य की मुख्य भाषा सधुक्कड़ी और पंचमेल खिचड़ी है। कबीरदास का साहित्य वर्तमान में भी अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि उनके विचार आडंबरहीन भक्ति,मानवता, सामाजिक समरसता और नैतिकता पर आधारित हैं, जो आज की जाति-पाती, साम्प्रदायिकता और दिखावे वाली दुनिया के लिए एक सार्थक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उनके दोहे आज के समय में भी सत्य, प्रेम और आंतरिक शुद्धी का पाठ पढ़ाते हैं।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोधपत्र में हम हिंदी साहित्य के मध्यकालीन कवि कबीरदास को न केवल एक कवि के रूप में बल्कि समाज सुधारक के रूप में अधिक जानने का प्रयास करेंगे। कबीरदास हिंदी भक्तिकाल के निर्गुण ज्ञानाश्रयी शारा के कवि, समाज सुधारक और संत थे, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से बाहरी आडंबरों, जातिवाद और रूढ़ियों का कड़ा विरोध किया। कबीरदास का साहित्य आज के दौर में भी अत्याधिक प्रासंगिक और सामाजिक उपयोगी है। उनके दोहे साम्प्रदायिक सौहार्द, मानवतावाद, नैतिक मूल्यों और आडंबरों के विरोध का संदेश देते हैं, जो वर्तमान विभाजित समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है। कबीर ने राम और रहीम की एकता पर बल दिया। उनके विचार आज की कट्टरता और धर्म के नाम पर फैलाई जा रही नफरत को नाकाम करने में सहायक हैं। कबीरदास ने धर्म के बाहरी दिखावे जैसे मूर्तिपूजा, तिलक, माला और अंधविश्वासों की कड़ी आलोचना की। वे आंतरिक शुद्धि और प्रेम को ही असली पूजा मानते थे। कबीर ने सादगी, ईमानदारी और विनम्रता का मार्ग दिखाया है।

"ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय। औरन को सीतल करें, आपहु सीतल होय ॥

इस दोहे में कबीरदास मीठी वाणी का महत्व बताते हैं। कबीर कहते हैं कि हमें अहंकार छोड़कर ऐसी मधुर वाणी यानी मधुर, मीठी भाषा बोलनी चाहिए जिससे सुनने वालों को तो शांति मिले ही, स्वयं का मन भी प्रसन्न हो जाए।

कबीरदास के लिए जाति और पंथ का कोई महत्व नहीं था, उनके लिए इंसानियत सबसे बड़ी थी। थी। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करने हो जो स्वार्थ और अहंकार से मुक्त हो। कबीरदास के विचार आज भी हमारे समाज को पथ प्रदर्शन कर रहे हैं, जो उन्हें एक कालजयी समाज सुधारक बनाते हैं। कबीर जी ने अपने साहित्य में खंडन-मंडन किया। खंडन में मूर्ति पूजा, कर्मकांड, बाह्य आडंबर, जाति-पाति और तीर्थ-व्रत हैं। इनका कबीर जी विरोध करते दिखाई देते हैं। मंडन यानी के समर्थन में कबीर जी ने निर्गुण निराकार ईश्वर, आंतरिक साधना, प्रेम और सहज अस्तित्व और मानवतावाद को दिखाया है। आज भी हमें कबीर जी के विचार प्रासंगिक दिखाई देते हैं।

हिंदी भक्तिकाव्य के संत कवियों में कबीर का स्थान सर्वोच्च है। यद्यपि कबीर-काव्य का मुख्य लक्ष्य अध्यात्म-विचार है, कविता रचना नही , तथापि उनकी वाणी में तत्कालीन समाज का चित्र अपने यथार्थ रूप में अंकित हुआ है। इतना ही नहीं, कबीर ने अपनी वाणी में अपनी सामाजिक विचारधारा को भी व्यक्त किया है। इसलिए कबीर जी को समाज सुधारक भी कहा जाता है। कुछ समीक्षकों ने उन्हें इस दृष्टि से क्रांतिकारी माना है और कुछ इन्हें प्रगतिशील भी कहते हैं। इस प्रकार कबीर को मानवतावादी कहें या प्रगतिशील क्रांतिकारी समाज सुधारक, इतना तो निश्चित है कि कबीर ने समकालीन समाज में प्रचलित भ्रष्टाचार, अंधविश्वास और मिथ्या-प्रदर्शनों पर तीव्र प्रहार किया है।

मुख्य शब्द - संयम और व्यवहार में नम्रता, समाज सुधार और मानवतावादी दृष्टिकोण, ज्ञान का महत्व, कर्म को महत्व, बाहरी आडंबरों का खंडन, धार्मिक पाखंड और हिंसा का विरोध, भाव का महत्व, अंधविश्वास और रूढ़ियों पर प्रहार, धैर्य और समय का महत्व, विवेकपूर्ण व्यवहार और बदले की भावना का त्याग, संवेदनशीलता को उच्च स्थान।

उद्देश्य
1) तार्किक और व्यावहारिक जीवन जीने की प्रेरणा।
2) प्रेम और मानवता को महत्व।
3) सच्चे जीवन मूल्यों से परिचित कराना।

4) सामाजिक सुधार के लिए सहायक।
5) नैतिक और आदर्श जीवन जीने में सहायक।

कबीर के युग में भारतीय समाज में हिंदू और मुस्लिम, दो विरोधी धर्म और संस्कृतियों विद्यमान विरोध, अनाचार और भ्रष्टाचार फैला हुआ था। धर्म उस समय सांप्रदायिकता का ही पर्यायवाची हो गया था ।धर्म के नाम पर उस युग में अंधविश्वासों, रुढियों, बाह्यआडंबरों एवं मिथ्या-प्रदर्शनों का बोलबाला था। समाज में कोई उचित व्यवस्था नहीं रही थी। तब कबीर ने अपने समय में प्रचलित हिंदू और मुस्लीम धर्म की परख की। उन्होंने इन धर्मों का सार ग्रहण किया और निरर्थक रुढ़ियों का तीव्र खंडन किया। कबीर को हिंदुओं की वर्णव्यवस्था और ब्राम्हणों के मिथ्याभिमान से तीव्र घृणा थी। ब्राम्हण और शूद्र में उन्हें किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता। कबीर के अनुसार ब्राह्मणों की धमनियों में जैसे रक्त (खून) बहता है, ठीक वैसे ही शूद्रों की धमनियों में बहता है। कबीर कहते हैं कि,
"एक ज्योति से सब उत्पन्न, का वामन का सूदा।"
जाति-पाति की कट्टरता को कबीर सामाजिक हीनता के लिए विरोधी मानते हैं और भक्ति के क्षेत्र में तो इसे सर्वथा त्याज्य कहते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं कि,
"जाति न पूछो साधु की, पूछ लिजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहने दो म्यान।"
साधू के बारे में महत्वपूर्ण जानने योग्य बात उसका अमूल्य ज्ञान है। ठीक उसी तरह जैसे तलवार। तलवार की कीमत होती है उसकी म्यान की नहीं। जाति को महत्व देना तो ज्ञान म्यान को महत्व देने के बराबर है। कबीर जी न केवल धार्मिक सुधार करने के पक्ष में थे, वे समाज को भी सुधारने का कार्य कर रहे थे। कबीर हिंदू और इस्लाम धर्मों में व्याप्त पाखंडोऔर रूढ़ियों का खंडन कर रहे थे। एक ओर कबीर हिंदुओं की मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं, तो दूसरी ओर मुसलमानों की नमाज, रोजा आदि पर विशेष मानसिकता का खंडन करते हैं।

"पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजु पहाड़। ताते घर की चकिया भली, पीस खाय संसार ॥ कंकड़ पत्थर जोड़ि के मस्जिद लई बनाय।

ता पर मुल्ला बांग दै, क्या बहरा हुआ खुदाय।"
कबीर जी कहते हैं कि अगर पत्थर की मूर्ति पूजने से ही भगवान मिल जाते, तो मैं किसी पहाड़ की पूजा कर लेता। पत्थर की मूर्ति पूजने से तो अच्छा है कि, घर की चक्की ही बेहतर है, जो अनाज पीसकर पूरे संसार का पेट भरती है।

कबीर ने मध्ययुग में एक ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो वर्तमान में वर्ग-विहीन समाज की ओर अग्रसर होने के लिए नितांत प्रासंगिक है। उन्होंने जिन विसंगतियों, वर्जनाओं, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया।वे आज भी यथावत है। कबीर युगीन समाज को रूढ़ियों, विकृतियों एवं अंधविश्वासों ने खोखला कर दिया था। धर्म एवं भक्ति में बाह्यांबरो की बहुलता थी। समाज की ऐसी दशा से वे विचलित हो रहे थे। कबीर के अनुसार आडंबर ही समाज में कभी स्थायी सुख-शांति एवं भाईचारे की बहाली नहीं हो सकती। समाज को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्होंने धर्म एवं भक्ति के बाह्याचारों का कड़ा विरोध कर सात्विक भक्ति पर जोर दिया। आज भी स्थिति बदली नहीं है। धर्म और भक्ति का रूप विकृत होता जा रहा है। इनमें व्याप्त दिखावा, बाह्याचारों की प्रदर्शनी, और बड़प्पन की मानसिकता ने समाज में संकीर्णता, असहिष्णुता एवं धार्मिक अराजकता को बढ़ावा दिया है। हमारे तीर्थ स्थानों पर भक्ति नहीं, लूट मची है। अत: कबीर आज भी प्रासंगिक हैं।

"मोको कहां ढूंढत बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मै देवालय, ना मै मस्जिद, ना काबे कैलास में, ना तो कोनो क्रिया करम में, नहीं जोग बैराग में।

कबीर ने देखा कि तत्कालीन समाज में हिंदू - मुसलमान दोनों ही अपने रास्ते से भटक गए थे। उनमें बाह्याचारों को प्रधानता थी। सत्य, अहिंसा, त्याग, संतोष आदि मूल्य विकृत हो चुके थे।लोगों में अपने धर्मों को लेकर मिथ्यादर्शन एवं श्रेष्ठता बोध हावी हो चुके थे। तब कबीरजी कहते हैं कि, ईश्वर तो घट घट वासी है। उसे पाने के लिए इंसान मंदिर मस्जिद में और काशी और कैलाश में ईश्वर को पाने के लिए फिर रहा है। जबकि ईश्वर उनके अंदर है। कबीर के अनुसार मस्जिद, मंदिर या कोई तीर्थक्षेत्र में ईश्वर को खोजने की जरूरत नहीं है। वे कण-कण में व्याप्त हैं। आगे कबीर कहते हैं कि -

"दिन में रोजा रखते हैं, रात हनत है गाय। कह हत्या कह बंदगी, कैसी खुशी खुदाय।"

कबीर कहते हैं कि मुसलमान दिन में रोजा रखते हैं और रात को गाय मारते हैं। कहाँ भक्ति और कहाँ हत्या? ऐसे परस्पर विरोधी कर्मों से ईश्वर कैसे खुश होंगे? यह सवाल कबीर ने उत्पन्न किया है। कबीर न केवल मुस्लिम धर्म, बल्कि हिंदू धर्म के व्याप्त भेष, तिलक, माला, योगाचार, व्रत, उपवास, श्राद्ध, तीर्थ-यात्रा तथा अन्य अनेक अंधविश्वासों की तीव्र आलोचना करते हैं -

"साधू भूखा भाव का, धन का भूख नाहिं। धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं।"

कबीर ने भगवाधारी लोगों से भी समाज को सावधान किया है। उनके अनुसार केवल संतो जैसे वस्त्र धारण करने से या दिखने से कोई संत नहीं होता। प्रवृत्ति एवं व्यवहार में संत होना आवश्यक है। वर्तमान समाज में भी ऐसे भगवाधारियों की कमी नहीं है। कहने को तो संत है, लेकिन आए दिन भोग-विलास, झूठ-फरेब, सूरा-सुंदरी जैसी चारित्रिक नैतिक पतन के गहरे गर्त में डूबे हुए हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन ढोंगीयों के पिछे हमारा शिक्षित, बुद्धिजीवी वर्ग हाथ जोड़े घूमता है। अतः आज फीर कबीर को आत्मसात करने की आवश्यकता है।

"क्या काशी कया उसर मगहर, राम हृदय बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामे कौन निहोरा॥

संत कबीर ने काशी में मृत्यु पर स्वर्ग मिलने की रूढीवादी मान्यता को तोड़ने के लिए, अपने अंतिम समय में काशी छोड़ मगहर जाकर प्राण त्यागे थे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि, ईश्वर की भक्ति हृदय में होनी चाहिए, न कि किसी विशेष स्थान पर। यदि काशी में मरने से ही स्वर्ग मिले तो, फिर भगवान की भक्ति करने का क्या अर्थ रह गया। इसका तात्पर्य यह है कि, स्थान का महत्व नहीं, भक्ति का महत्व है। यदि मैं मगहर में मरूं, तब भी मुझे प्रभु ही मिलेंगे।

कबीरदास जीवन में संतोष और सादगी को महत्व देते थे। यह उनके दोहे से स्पष्ट होता है:

"साई इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।।"

वर्तमान समय में जो हमें अधिक पाने की चाह हो हो रही है, उसे वह पहले भी थी। तभी तो कबीर कहते हैं कि, हे ईश्वर, मुझे केवल इतना ही चाहिए कि मेरा परिवार पल सके, मैं खुद भूखा न रहूं और न मेरे द्वार से कोई साधु संत भी भूखा न जाए। अगर जीवन में यह विचार हो तो जीवन आनंद से जीया जा सकता है । लेकिन हमें लालच और ज्यादा पाने की जो चाह है, वह आनंद से जीने नहीं देती है। कबीरदास जीवन जीने के लिए सिर्फ संतोष और सादगी ही नहीं बल्कि धैर्य को भी जरूरी मानते हैं। वे ऐसे

"धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आए फल होय।"

उपर्युक्त दोहें में हम देखते हैं कि मनुष्य बड़ा चंचल है। उसमें धैर्य की कमी है। मनुष्य हमेशा सब कुछ पाने के लिए जल्दबाजी करता है। कबीर इसी कमी को दूर करने के लिए कहते हैं। वे कहते हैं कि, मन में धैर्य रखना चाहिए क्योंकि सब कुछ सही समय पर होता है। माली भले ही पौधे को सौ घड़े पानी से सींचे लेकिन फल तो सही ऋतु (समय) पर ही लगता है।

कबीर कर्म को भी बहुत मानते हैं। वे कहते हैं कि, कर्म का फल मिलता है। अगर अच्छे कर्म करोगे तो अच्छा ही फल मिलेगा। वे ऐसे जो ताको काँटा बुवै, ताहि बोऊ तू फूल। तोको फूल को फूल है, वाको है तिरसूल।।

यानि के आपके रास्ते में कांटे बोना मतलब परेशानिया और बाधाएँ उत्पन्न करने वाले के साथ भी हमें अच्छा रहना है। भलाई से उसकी मदद करनी है। क्योंकि हम औरों के साथ अच्छा करेंगे तो हमारे साथ भी अच्छा ही होगा। जो आपके साथ बुरा व्यवहार कर रहा है, उसका खुद ही बुरा होगा। हमें उसके साथ बुरा करने की जरूरत नहीं है। कबीर पुस्तकीय ज्ञान के बारे में कहते हैं कि

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पड़े सो पंडित होई ॥"

आज शिक्षा के कई आयाम हैं। तकनीकी विकास के साथ समृद्ध शिक्षा प्रणाली का दंभ भर रहे हैं। सवाल यह है कि नैतिक एवं मानवीय शिक्षा से परे केवल मानव रूपी मशीन तैयार कर रहा है। स्वार्थ,संवेदनहीनता से मनुष्य जीवन के सत्य से भटक रहा है। कबीर अनपढ़ थे और नीच जाति से होने के कारण काशी के पंडितों से उन्हें उलाहना मिली। कबीर कहते हैं कि बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ने से कोई पंडित (ज्ञानी) नहीं होना। इंसान अपने अनुभवों से ज्ञानी होता है।प्रेम के ढाई अक्षर से तात्पर्य मानवीय संवेदना को समझने से है, वहीं सच्चा ज्ञानी है।

निष्कर्ष:

कबीरदास के काल में अंधविश्वास, रूढ़ी-आडंबर थे, आज की वर्तमान स्थिति में भी वे हमारे समाज से समाप्त नहीं हुए हैं। आज भी हमारा पढ़ा-लिखा, बुद्धिजीवी वर्ग ढोंगी साधुओं की सेवा में लगा हुआ है। जात-पात, छुआछुत, अशिक्षा, गरीबी जैसी विषमताओं से आज भी हम लड़ाई लड़ रहे हैं। धर्म और राजनीति में आज नैतिक पतन हो रहा है। पहले धर्म की राजनीति चल रही थी, आज राजनीति का धर्म है। आज हमारे समाज में आर्थिक स्वार्थ, झूठ-फरेब, शोषण, उत्पीड़न और भी भयानक रूप ले चुका है। अतः कबीर के समता, स्वतंत्रता और भाईचारे को महत्व देने वाले विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। कबीरदास ने अपने साहित्य में जो मानवीय मूल्यों की स्थापना की है, जिसमें प्रेम, मानवता, सद्भाव, नैतिकता आदि की आज भी हमारे समाज को जरूरत है। कबीर एक युगद्दष्टा थे जिन्होंने तत्कालीन समस्याओं के माध्यम से भविष्य की चुनौतियों को पहचाना, जो उन्हें आज भी एक कालजयी समाज सुधारक बनाता है। कबीर का दर्शन मनुष्य को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर विश्व बंधुत्व की भावना से जोड़ता है, जो आज की हिंसक और विभाजित दुनिया के लिए आवश्यक है।

संदर्भ
सुदर्शन चोपड़ा - कबीर परिचय तथा रचनाएँ, पृ.12
रवींद्र कुमार सिंह - संतकाव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 35
सुदर्शन चोपड़ा - कबीर परिचय तथा रचनाएँ, पृ. 31 और 35
रवींद्र कुमार सिंह - संतकाव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. क्र. 86 और 88
डॉ. उमा देवी - कबीर की प्रासंगिकता: वर्तमान संदर्भ